International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 21-08-2025, Accepted: 19-09-2025, Published: 06-10-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 5-8

# हिंदी कविता में पर्यावरण चेतनाः एक समीक्षात्मक अध्ययन

**सन्तोष कुमारी**
हिन्दी शोधार्थी, ग्लोकल स्कूल ऑफ, आर्टएण्ड सोशल साईंस, ग्लोकल विवविद्यालय, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

**सारांश**
वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट विश्व–स्तर की सबसे बड़ी समस्या बन चुका है। प्रकृति के संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, प्रदूषण, वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन और शहरीकरण ने समस्त जीवन–जगत को असंतुलित बना दिया है। इस संकट से उबरने के लिए जहाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका है, वहीं साहित्य भी मानवीय चेतना को जागरूक करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हिंदी कविता ने आरंभ से ही प्रकृति और पर्यावरण को जीवन, संस्कृति और संवेदना का अभिन्न हिस्सा माना है। इस शोध–पत्र में भक्तिकाल से लेकर समकालीन काल तक की हिंदी कविताओं में पर्यावरण चेतना के स्वरूप का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

**मूल शब्दः** पर्यावरण चेतना, हिंदी कविता, प्रकृति, प्रदूषण, समकालीन साहित्य

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को सदैव पूजनीय स्थान प्राप्त रहा है। वेदों और उपनिषदों में नदियों, वनों और पर्वतों की स्तुति की गई है। 'पृथ्वी सूक्त' और 'नदी सूक्त' में प्रकृति के प्रति गहरी आस्था प्रकट होती है। उपनिषदों में कहा गया है कि "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत" अर्थात् सम्पूर्ण जगत ईश्वर से व्याप्त है, जिसमें मानव और प्रकृति दोनों सम्मिलित हैं। हिंदी साहित्य का विकासक्रम भी प्रकृति और पर्यावरण से अलग नहीं है। आदिकालीन काव्य में जहाँ वीरगाथाएँ और धार्मिक भावनाएँ प्रमुख थीं, वहीं संत और भक्त कवियों की वाणी में प्रकृति का गहन संवेदनात्मक चित्रण मिलता है। रीतिकाल में प्रकृति मुख्यतः शृंगार और ऋतु–चित्रण का साधन बनी। छायावाद ने प्रकृति को आत्मा और संवेदना से जोड़ा। प्रगतिवाद और नई कविता ने प्रकृति को यथार्थ और संकट के रूप में चित्रित किया। समकालीन कवियों ने तो प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरणीय असंतुलन और प्रदूषण पर कड़ा स्वर अपनाया। आज जब संयुक्त राष्ट्र (UN) और विभिन्न वैश्विक संस्थाएँ Sustainable Development Goals की बात करती हैं, तब साहित्य विशेषकर कविता इस लक्ष्य में समाज को संवेदनशील बनाने का कार्य करती है।

हिंदी साहित्य और पर्यावरण पर आलोचकों ने समय–समय पर चर्चा की है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य की भूमिका में बताया कि भारतीय संस्कृति में प्रकृति जीवन का आधार रही है। रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखते समय संतों और भक्तों की वाणी में प्रकृति के नैतिक और आध्यात्मिक स्वरूप को रेखांकित किया। नामवर सिंह ने कविता के नए प्रतिमान में कहा कि कविता समाज और समय के संकटों को उद्घाटित करती है–आज पर्यावरण सबसे बड़ा संकट है। पश्चिम में Cheryll Glotfelty us The Ecocriticism Reader (1996) में Ecocriticism' शब्द को परिभाषित करते हुए साहित्य और पर्यावरण संबंधों पर बल दिया। Lawrence Buell ने The Environmental Imagination (1995) में पर्यावरणीय चेतना को साहित्यिक विमर्श का अनिवार्य अंग बताया।

1 **भक्तिकाल और पर्यावरण चेतनाः** भक्तिकालीन कवियों ने प्रकृति को आध्यात्मिक अनुभव का माध्यम बनाया। भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णिम युग माना जाता है। इस युग में भक्ति आंदोलन के कवियों ने जहाँ एक ओर ईश्वर–भक्ति को सरल, सहज और जनमानस की भाषा में प्रस्तुत किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने प्रकृति और पर्यावरण के प्रति गहरी संवेदनशीलता भी व्यक्त की। भक्तिकालीन साहित्य में पर्यावरण केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के जीवन, भावनाओं और आध्यात्मिक अनुभव का अभिन्न अंग है।

**कबीर कहते हैं**

''माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोहि।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूँगी तोहि।।''[1]

यहाँ मिट्टी की आवाज मानो चेतावनी देती है कि मनुष्य प्रकृति का अपमान करेगा तो वही प्रकृति एक दिन उसे परास्त कर देगी।

**तुलसीदास ने रामचरितमानस में वर्षा ऋतु का सुंदर वर्णन किया**

'बरषा काल मेघ घन घोरा।
बरसत बारिद देखि सबोरा।।''[2]

वर्षा केवल प्राकृतिक घटना नहीं है, बल्कि कृषि और समाज के जीवन का आधार है।

सूरदास के पदों में ब्रजभूमि का पर्यावरण गहराई से अंकित है। यमुना, वन और पशु–पक्षियों के साथ ग्रामीण जीवन का चित्रण पर्यावरणीय चेतना को जीवंत बनाता है। भक्तिकालीन साहित्य में व्यक्त पर्यावरण चेतना आज भी प्रासंगिक है। कबीर, सूर, मीरा और तुलसी की रचनाओं से हमें यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य और प्रकृति का संबंध आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक स्तर पर जुड़ा हुआ है। आधुनिक समय में जब पर्यावरणीय संकट गहरा रहा है, तब भक्तिकाल की यह परंपरा हमें प्रकृति के संरक्षण और संवर्धन की दिशा में मार्गदर्शन देती है।

2 **रीतिकाल और प्रकृति का सौंदर्यः** रीतिकाल में शृंगार प्रधानता के बावजूद ऋतु–चित्रण अत्यंत प्रभावशाली है। हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल को ''श्रृंगार युग'' या ''रीति युग'' के नाम से विशेष पहचान मिली है। यह काल लगभग सन् 1650 से 1850 तक माना जाता है। इस काल के कवियों का मुख्य विषय श्रृंगार, नायिका–भेद, नायक–नायिका के संबंध और दरबारी जीवन रहा। किंतु केवल श्रृंगार तक ही रीतिकाल सीमित नहीं है, बल्कि इस काल की कविताओं में प्रकृति का अत्यंत सजीव और रमणीय

चित्रण भी मिलता है। रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि श्रृंगारिक भावनाओं और सौंदर्य चेतना के संवाहक के रूप में चित्रित किया। प्राकृतिक परिवेश कृ जैसे ऋतु–चक्र, बाग–बगीचे, पुष्प–लता, आम्र–मंजरी, कोयल का कूकना, चाँदनी रात, वर्षा के बादल, सरिता और तालाब – इन सबका सौंदर्य काव्य में इस प्रकार रचा–बसा है कि वे श्रृंगार के साथ अभिन्न हो जाते हैं।

केशव, पद्माकर, देव और बिहारी जैसे कवियों ने प्रकृति को अत्यंत कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। बिहारी के दोहों में तो ऋतु और प्रकृति का सौंदर्य भाव–संकेतों और अलंकारों के माध्यम से अद्वितीय रूप में प्रकट हुआ है। उदाहरण के लिए वसंत ऋतु का वर्णन केवल मौसम नहीं, बल्कि नायिका–श्रृंगार के उत्कर्ष का संकेत बन जाता है। इस प्रकार रीतिकालीन साहित्य में प्रकृति का सौंदर्य कवि–कौशल, अलंकारिकता और भावानुभूति का अद्भुत समन्वय है।

**बिहारी कहते हैं–**

''फूलन में बसंत, फलन में आम,
बरसन में घन, हरसन में कंत।''[3]

यह दोहा मनुष्य और प्रकृति के ऋतु–चक्र में सामंजस्य को दर्शाता है। रीतिकालीन साहित्य में प्रकृति का सौंदर्य केवल दृश्य रूप में उपस्थित नहीं है, बल्कि वह मानवीय भावनाओं का संवाहक और श्रृंगारिक भावभूमि का अभिन्न अंग है। कवियों ने प्रकृति को मानवीकरण करते हुए उसे जीवंत बना दिया। कभी चाँद–सूर्य नायक–नायिका के साक्षी बनते हैं, तो कभी कोयल और पपीहा विरह की पीड़ा के साथी हो जाते हैं। रीतिकाल के कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य को अलंकार, शृंगार और रस की दृष्टि से गढ़ा। उनके लिए प्रकृति केवल सौंदर्य का माध्यम नहीं, बल्कि रस–निष्पत्ति का आधार थी। इसीलिए वसंत, वर्षा, शरद, हेमंत सभी ऋतुएँ कवियों के काव्य में श्रृंगार रस के विविध रूपों में खिल उठती हैं। आधुनिक दृष्टि से भी रीतिकालीन कवियों का यह प्रकृति चित्रण महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह केवल भोगवादी दृष्टिकोण नहीं, बल्कि सौंदर्य चेतना और कलात्मक संवेदना का दर्पण है। उनके काव्य से यह सन्देश मिलता है कि प्रकृति और मनुष्य के बीच का भावनात्मक संबंध अटूट है और साहित्य उस संबंध को और भी गहन बनाता है।

3 **छायावाद और प्रकृति की आत्मीयताः** छायावादी कवियों ने प्रकृति को मानवीय आत्मा और संवेदना से जोड़ा। हिंदी साहित्य के विकास–क्रम में छायावाद को स्वर्णिम युग कहा जाता है। सन् 1918 से 1936 के बीच उभरे इस काव्य–आंदोलन ने न केवल काव्य की भाषा और शैली को बदला, बल्कि विषयवस्तु को भी गहरी संवेदनाओं से भर दिया। छायावादी कवियों–जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा–ने हिंदी कविता को अंतर्मुखी, आध्यात्मिक, सांकेतिक और भावनात्मक धरातल प्रदान किया। छायावाद का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है प्रकृति के साथ आत्मीय संबंध। प्रकृति यहाँ मात्र बाह्य दृश्य या सजावट नहीं है, बल्कि कवि के अंतर्मन का साथी और आत्मा का साक्षात्कार है। प्रकृति के माध्यम से कवियों ने अपने सुख–दुख, प्रेम–विरह, आशा–निराशा और आध्यात्मिक अनुभूतियों को व्यक्त किया। सुमित्रानंदन पंत की कविताओं में प्रकृति सौंदर्य और जीवन का पर्याय है। उनके लिए प्रकृति "सजीव आत्मा" है। जयशंकर प्रसाद ने प्रकृति को दार्शनिक और रहस्यमयी स्वर दिया। महादेवी वर्मा की कविता में प्रकृति संवेदना और करुणा का प्रतीक है। निराला ने प्रकृति को जनजीवन और संघर्ष से जोड़कर देखा। छायावाद में प्रकृति और मानव के बीच गहरी आत्मीयता दिखाई देती है। कवि प्रकृति से संवाद करता है, उसमें अपनी पीड़ा और आनंद को प्रतिध्वनित करता है। प्रकृति कभी सहचरी बनती है, कभी सखी, कभी मार्गदर्शक और कभी आत्मा की प्रतिच्छवि। इस प्रकार, छायावाद और प्रकृति की आत्मीयता हिंदी साहित्य में एक ऐसा अध्याय है, जिसने कविता को केवल वर्णनात्मक न रखकर, अनुभवात्मक और दार्शनिक बना दिया।

**सुमित्रानंदन पंत की पल्लव में प्रकृति का सौंदर्य–चित्रण**

''वसुंधरा की गोद में, फूल–सी हँसी बिखरी।''[4]
पंत के लिए प्रकृति सौंदर्य और शांति का स्रोत है।

**महादेवी वर्मा लिखती हैं**

''मैं नीर भरी दुख की बदली।''[5]

यहाँ बादल का प्रतीक मानवीय करुणा और प्राकृतिक संवेदना का मेल है। निराला की कविताओं में भी प्रकृति संघर्ष और श्रम का प्रतीक है। छायावाद के कवियों ने मानव और प्रकृति के बीच आत्मीय संबंध को स्थापित करते हुए यह स्पष्ट किया कि प्रकृति केवल बाहरी सजावट नहीं, बल्कि मानव हृदय की गहनतम अनुभूतियों का प्रतिबिंब है। इस प्रकार, छायावाद और प्रकृति की आत्मीयता ने हिंदी कविता को नया रूप और नई दिशा दी। यह केवल काव्य–सौंदर्य का नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना और दार्शनिक चिंतन का भी गहरा आयाम है। छायावाद हमें यह सिखाता है कि प्रकृति और मनुष्य का रिश्ता सह–अस्तित्व और आत्मीयता का है, जिसे बनाए रखना ही साहित्य और जीवन दोनों की सार्थकता है।

4 **प्रगतिवाद और पर्यावरण का यथार्थः** प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति को जीवन के यथार्थ और संघर्ष से जोड़ा। हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद का उदय बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में हुआ। यह समय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उथल–पुथल का था – औद्योगिकीकरण, साम्राज्यवाद, वर्ग संघर्ष और स्वतंत्रता आंदोलन ने समाज को गहराई से प्रभावित किया। साहित्यकारों ने इस दौर में यथार्थ को केंद्र में रखा और श्रमिक, किसान, स्त्री, शोषित–वंचित वर्ग की पीड़ा और संघर्ष को आवाज दी। प्रगतिवादी साहित्य में पर्यावरण की चेतना भी अंतर्निहित रूप में विद्यमान है। औद्योगिक विस्तार, मशीनवाद और शहरीकरण ने जहाँ एक ओर पूँजीवादी विकास को गति दी, वहीं दूसरी ओर प्रकृति के दोहन और पर्यावरणीय असंतुलन को जन्म दिया। प्रेमचंद, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और शमशेर जैसे साहित्यकारों ने प्रकृति और मनुष्य के बदलते संबंध को गहरी दृष्टि से देखा। प्रगतिवादी कवियों ने नदियों, खेतों, धरती, वर्षा और ऋतुओं को केवल सौंदर्य के लिए चित्रित नहीं किया, बल्कि इन्हें श्रमिक जीवन, अन्न उत्पादन और जीविका से जोड़ा। प्रकृति यहाँ भोग–विलास की वस्तु नहीं बल्कि उत्पादन का साधन और जीविका का आधार है। इस प्रकार प्रगतिवाद ने पर्यावरण को यथार्थवादी दृष्टि से देखा और उसके शोषण पर प्रश्नचिह्न लगाया।

**नागार्जुन (अकाल और उसके बाद)**

''धरती ने ओढ़ ली है चादर
धूल और धुएँ की
भूखी है हरियाली
सूखी हैं नदियाँ।''[6]

यह आधुनिक पर्यावरणीय संकट का यथार्थवादी चित्रण है। त्रिलोचन की कविताएँ भी प्रकृति और किसान जीवन को गहराई से चित्रित करती हैं।

'' उजले उजले बादल आकाश में
दस बजे दिन के प्रकाश में ''[7]

प्रगतिवाद के साहित्य में पर्यावरण का यथार्थ इस रूप में सामने आता है कि प्रकृति केवल रोमानी सौंदर्य का प्रतीक नहीं, बल्कि मनुष्य के श्रम, संघर्ष और जीवन का अविभाज्य हिस्सा है। औद्योगिकीकरण और पूँजीवाद ने जहाँ पर्यावरणीय असंतुलन और शोषण को बढ़ावा दिया, वहीं प्रगतिवादी साहित्य ने उसकी वास्तविक स्थिति को उद्घाटित किया। प्रगतिवादी कवियों और लेखकों ने दिखाया कि खेत–खलिहान, धरती, जल और वृक्ष सिर्फ प्राकृतिक दृ य नहीं हैं, बल्कि ये किसान–मजदूर की जीविका और श्रम के सहचर हैं। पर्यावरणीय यथार्थ को उन्होंने वर्ग–संघर्ष और सामाजिक न्याय की दृष्टि से प्रस्तुत किया। आज के संदर्भ में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि जलवायु संकट, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने पूरी मानवता के सामने गंभीर प्रश्न खड़े कर दिए हैं। प्रगतिवादी साहित्य हमें यह सिखाता है कि पर्यावरण का यथार्थ केवल प्राकृतिक संरक्षण का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय और मानवीय अस्तित्व का प्रश्न भी है।

5 **समकालीन कविता और पर्यावरण संकट**: समकालीन कवियों ने प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरणीय संकट को अपनी रचनाओं में उठाया। समकालीन हिंदी कविता वह साहित्य है जो बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर आज तक की सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों, मानवीय संघर्षों और अस्तित्वगत चुनौतियों को अभिव्यक्त करता है। इस दौर में जब विज्ञान, प्रौद्योगिकी और उपभोक्तावाद ने मानव जीवन को बदल दिया, तब पर्यावरणीय संकट एक गंभीर वैश्विक समस्या बनकर सामने आया। प्रदूषण, वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन, औद्योगिक कचरा, नदियों का विनाश और जैव विविधता की क्षति – ये सब समकालीन यथार्थ का हिस्सा बन गए। समकालीन कवियों ने इस संकट को केवल प्राकृतिक असंतुलन के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे मानव सभ्यता के लालच, पूँजीवादी शोषण और अनियंत्रित उपभोग की परिणति माना। कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, ज्ञानेंद्रपति, मंगलेश डबराल और राजेश जोशी जैसे कवियों की कविताओं में पर्यावरण संकट एक गहरी चिन्ता के रूप में उभरता है। ये कवि मानते हैं कि प्रकृति का विनाश दरअसल मनुष्य के आत्मविनाश का ही दूसरा रूप है। नदियों, जंगलों, खेतों और गाँवों के उजड़ने का दर्द उनकी कविताओं में जीवंत है। इस प्रकार समकालीन कविता ने पर्यावरण संकट को केवल "विषय" नहीं बनाया, बल्कि इसे मनुष्य और उसके अस्तित्व के संकट के रूप में चित्रित किया।

**केदारनाथ सिंह (पेड़)**

''पेड़ सिर्फ पेड़ नहीं होते
वे हमारे पुरखों की स्मृतियाँ होते हैं।''[8]

पेड़ का कटना केवल पर्यावरणीय क्षति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्मृति का विनाश है।

**मंगलेश डबराल (पहाड़)**

''पहाड़ अब शहरों में उतर आए हैं
और पहाड़ों में शहर चढ़ गए हैं।''[9]

यह शहरीकरण और पारिस्थितिक असंतुलन की चेतावनी है। समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण संकट का यथार्थ हमें यह चेतावनी देता है कि यदि मनुष्य ने अपनी भोगवादी प्रवृत्ति और पूँजीवादी लालच पर नियंत्रण नहीं किया, तो उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। यहाँ कवि केवल प्रकृति की सुंदरता का गान नहीं करता, बल्कि उसके क्षरण और विनाश की पीड़ा को भी स्वर देता है। कवियों ने यह स्पष्ट किया है कि नदियों का सूखना, वनों का कटना, प्रदूषित हवा और बिगड़ता जलवायु चक्र – ये सब केवल प्राकृतिक आपदाएँ नहीं हैं, बल्कि यह मानव सभ्यता के गलत विकास मॉडल के परिणाम हैं। समकालीन कविता का उद्देश्य चेतावनी देना ही नहीं है, बल्कि समाज में पर्यावरणीय जागरूकता पैदा करना भी है। इस प्रकार, समकालीन कविता एक सशक्त सांस्कृतिक हस्तक्षेप के रूप में सामने आती है। यह हमें बताती है कि पर्यावरण का संकट केवल पारिस्थितिकी का नहीं, बल्कि मानवीय अस्तित्व और भविष्य की पीढ़ियों के जीवन का संकट है। अतः समकालीन कविता पर्यावरण–संवेदनशील समाज की रचना की दिशा में एक महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रयास है।

**तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य:** यदि अंग्रेजी साहित्य से तुलना करें तो हमें विलियम वर्ड्सवर्थ की कविताओं में प्रकृति का रोमानी चित्रण मिलता है। वहीं हिंदी के पंत और महादेवी वर्मा में भी ऐसी ही संवेदना दिखती है। लेकिन समकालीन हिंदी कवियों ने जिस तीव्रता से पर्यावरणीय संकट उठाया है, वह उन्हें वैश्विक साहित्यिक विमर्श से जोड़ता है।

**निष्कर्ष:** हिंदी कविता में पर्यावरण चेतना एक निरंतर प्रवाह की तरह विद्यमान है। भक्तिकाल से लेकर समकालीन कविता तक कवियों ने प्रकृति को जीवन, संस्कृति और संवेदना का आधार माना। आधुनिक काल के कवियों ने प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरणीय संकट को व्यक्त किया और समाज को जागरूक करने का प्रयास किया। इससे यह सिद्ध होता है कि हिंदी कविता मात्र सौंदर्य का गायन नहीं, बल्कि वह समाज को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाने और चेतावनी देने का एक सशक्त साधन है। इस प्रकार, हिंदी कविता में पर्यावरण चेतना का स्वरूप समय के साथ परिवर्तित और परिपक्व होता गया। आज के संदर्भ में यह और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि प्रदूषण, वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन और जैव–विविधता का ह्रास मानव अस्तित्व के लिए गंभीर खतरा बन चुका है। हिंदी कविता हमें यह सिखाती है कि प्रकृति केवल सौंदर्य का प्रतीक नहीं, बल्कि मानव जीवन की आधारशिला है। इसका संरक्षण केवल पर्यावरणीय दायित्व ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक दायित्व भी है।

## संदर्भ सूची


1 कबीरदास, बीजक, वाराणसीः भारतीय ज्ञानपीठ, 1985।
2 तुलसीदास, रामचरितमानस, गोरखपुरः गीता प्रेस, 1990।
3 बिहारीलाल, सतसई, दिल्लीः साहित्य अकादमी, 1978।
4 पंत, सुमित्रानंदन, पल्लव, प्रयागः भारतीय ज्ञानपीठ, 1926।
5 वर्मा, महादेवी, दीपशिखा, प्रयागः भारतीय ज्ञानपीठ, 1933।
6 नागार्जुन, अकाल और उसके बाद, दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 1959।
7 त्रिलोचन, धरती, दिल्लीः साहित्य अकादमी, 1968।
8 केदारनाथ सिंह, बाघ, दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 1983।
9 मंगलेश डबराल, हम जो देखते हैं, दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 1987।